संस्कृत साहित्य सौरभ

मृच्छकटिक

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

शूद्रक-कृत

मृच्छकटिक

श्री राजेंद्रसिंह गौड़
द्वारा
कथा-सार

विष्णु प्रभाकर
द्वारा
संपादित

१९५७

सस्ता साहित्य प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय,
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

तीसरी बार : १९५७
मूल्य
छः आना

मुद्रक
हिंदी प्रिंटिंग प्रेस
क्वीन्स रोड, दिल्ली

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

हमारा संस्कृत-साहित्य अत्यंत समृद्ध है। भारतीय जीवन का शायद ही कोई ऐसा अंग हो जिसके संबंध में मूल्यवान सामग्री का अनंत भंडार संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध न हो। लेकिन खेद की बात है कि संस्कृत से अपरिचित होने के कारण हिंदी के अधिकांश पाठक उससे अनभिज्ञ हैं। उनमें जिज्ञासा है कि वे उस साहित्य से परिचय प्राप्त करें; परंतु उसका रस वे हिंदी के द्वारा लेना चाहते हैं।

पाठकों की इसी जिज्ञासा को देखकर संस्कृत के महाकवियों, नाटककारों आदि की प्रमुख रचनाओं को छोटी-छोटी कथाओं के रूप में हम हिंदी में प्रस्तुत कर रहे हैं।

पुस्तकों की भाषा बहुत सरल बनाने का प्रयत्न किया गया है। पाठकों की सुविधा के लिए टाइप भी मोटा लगाया गया है।

इन पुस्तकों का संपादन हिंदी के सुलेखक श्री विष्णु प्रभाकर ने बड़े परिश्रम से किया है।

इस माला में कई पुस्तकें निकल चुकी हैं और आगे निकल रही हैं। आशा है, हिंदी के पाठकों को इन पुस्तकों से संस्कृत-साहित्य की महान् रचनाओं की कुछ-न-कुछ झांकी अवश्य मिल जायगी। पूरा रसास्वादन तो मूल ग्रंथ पढ़कर ही हो सकेगा। यदि इन पुस्तकों के अध्ययन से मूल पुस्तकें पढ़ने की प्रेरणा हुई तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

तीसरा संस्करण

इस माला की पुस्तकें बहुत ही लोकप्रिय हो रही हैं और हमें हर्ष है कि कुछ पुस्तकों का तीसरा संस्करण तक प्रकाशित हो रहा है। आशा है कि भारतीय संस्कृति और साहित्य के प्रेमी पाठक इन पुस्तकों को और भी चाव से अपनावेंगे।

—मंत्री

भूमिका

'मृच्छकटिक' संस्कृत साहित्य का एक ऐसा रत्न है जिसकी प्रशंसा सब देशों और सब कालों के विद्वानों ने मुक्त कंठ से की है। दूसरे नाटकों से इसमें एक विशेषता है। वह यह कि यह राजाओं और रानियों को छोड़कर तत्कालीन भारत के मध्यवर्ग का सुंदर चित्र उपस्थित करता है। यद्यपि यह प्रेम-कथा है तथापि उस काल की सामाजिक अवस्था का उसमें अनोखा चित्रण हुआ है। राजा और प्रजा के संबंध का भी विश्लेषण कवि ने किया है। जो अन्यायी होता है उसका पतन होना ही चाहिए, यह नाटक का संदेश है। सदाचारी कभी अपने पथ से नहीं हटते।

इस नाटक के लेखक चरित्र-चित्रण में सिद्धहस्त हैं। सारे पात्र सजीव हैं। इसके लेखक महाकवि शूद्रक राजा माने गए हैं। अनेक विद्वानों की भांति उनके काल के बारे में बड़ा मतभेद है। कुछ लोग उन्हें विक्रम की पहली सदी का मानते हैं, पर अधिकतर विद्वानों का कहना है कि वह पांचवीं सदी में हुए। वह बड़े विद्वान् और प्रतापी राजा थे। उन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया था। वह परम सुंदर थे और योद्धा भी। उनके बारे में अनेक दंत-कथाएं प्रचलित हैं। कादंबरी, हर्षचरित्र, कथासरित्सागर, स्कंद-पुराण और बैताल पच्चीसी सभीमें उनका वर्णन आता है। वैसे कुछ लोग कहते हैं कि मृच्छकटिक महाकवि शूद्रक का लिखा है ही नहीं, पर यह गलत है। हां, उनका अभी तक यही ग्रंथ मिला है, लेकिन यही ग्रंथ प्रसिद्धि के लिए काफी है। इसके लेखक ने साहसपूर्वक तत्कालीन समाज का सच्चा चित्र सब कालों के लिए सुरक्षित कर दिया है।

—संपादक

मृच्छकटिक

: १ :

महाकाल का नगर उज्जैन शिप्रा नदी के तट पर बसा हुआ है। प्राचीन काल में यह संस्कृति और कला का केंद्र था। उस समय वहां एक ब्राह्मण रहता था, जिसका नाम चारुदत्त था। उसके परिवार में कुल तीन व्यक्ति थे; वह, उसकी स्त्री धूताबाई और उनका पुत्र रोहसन। एक थी दासी जिसका नाम रदनिका था और एक था दास वर्द्धमानक। दोनों दास-दासी बड़े भले और भरोसे के थे। चारुदत्त सेठों के चौक में रहता था। उसके घर में धन-धान्य की कमी न थी। द्वार पर रात-दिन भिखारियों की भीड़ लगी रहती थी। दिल खोलकर वह अन्न, वस्त्र और धन का दान करता था। अपनी इस उदारता के कारण थोड़े ही दिनों में वह निर्धन होगया। उसके संगी-साथी सब छूट गए। केवल एक मित्र रह गया मैत्रेय। मैत्रेय सदा उसके साथ रहता था और अपनी बातों से उसका मनोरंजन किया करता था।

सज्जन निर्धन होने पर भी अपने सद्गुणों को नहीं छोड़ता। वास्तव में उसकी निर्धनता ही उसके सद्गुणों की कसौटी बन जाती है। चारुदत्त के पास धन न रहा था, पर उसकी सज्जनता, उसकी उदारता,

और उसकी दानशीलता में बाल बराबर भी अंतर नहीं आया था। वह जैसा पहले था, वैसा ही अब था। इसलिए सारे नगर में उसका बड़ा आदर था। उसके चरित्र पर संदेह करने का किसीको साहस न होता था।

उसी नगर में एक गणिका रहती थी। उसका नाम था वसंतसेना। वह अपने नगर की अप्सरा थी। जैसा रूप, वैसी ही संपत्ति। संगीत, नृत्य, नाटक आदि कलाओं से उसे बहुत प्रेम था। आठ आंगनोंवाला उसका महल सब प्रकार के सुख-साज से भरा हुआ था।

इतना होने पर भी उसे न तो रूप का अभिमान था, न धन का गर्व। वह बड़ी दानी थी। नगर के भिखारी दिन-रात उसके द्वार पर इकट्ठे रहते थे। उसके परिवार में उसकी बूढ़ी मां थी, भाई था और थीं कई दासियां, जिनमें से मदनिका पर उसका विशेष स्नेह था। कर्णपूरक और कुंभिलक उसके सेवक थे।

एक बार कामवन के मेले में चारुदत्त ने वसंतसेना का संगीत सुना। वहींपर उन दोनों ने एक-दूसरे को देखा और प्रेम करने लगे। चारुदत्त वैसे तो निर्धन थे, पर प्रेम दिल की दुनिया में रहता है, धन को वह नहीं देखता।

वसंतसेना को एक और आदमी प्रेम करने का दावा करता था। वह था राजा का साला संस्थानक। वह नगर-कोतवाल भी था। राजा का नाम था पालक।

वह प्रजा पर बड़ा अत्याचार करता था। इसलिए वह उसके शासन से असंतुष्ट थी और छिपे-छिपे अहीर के बेटे आर्यक की सहायता किया करती थी। आर्यक सज्जन और उदार था। उसके प्रति प्रजा की पूरी सहानुभूति थी। पर राजद्रोह के अपराध में राजा ने उसे जेल में डाल रखा था। चारुदत्त भी उसके क्रोध का शिकार हो चुका था। ऐसी दशा में संस्थानक की बन आई थी। वह मनमाना अत्याचार किया करता था। इस समय उसकी दृष्टि वसंतसेना पर थी। वह उसे अपनी बनाकर रखना चाहता था।

एक रात की बात है। चारों ओर घोर अंधकार छाया हुआ था। हाथ-को-हाथ नहीं सूझता था। ऐसे अंधकार में चारुदत्त अपनी दासी रदनिका के साथ चौराहे पर बलि-भोजन देने जा रहा था कि उसका मित्र मैत्रेय वहां आगया। उसने मैत्रेय से बलि-भोजन दे आने को कहा। पहले तो वह तैयार नहीं हुआ; परंतु जब चारुदत्त ने बहुत कहा तो वह राजी होगया। रदनिका हाथ में दीपक लेकर उसके साथ चली। ज्योंही उसने बाहर जाने के लिए खिड़की खोली, एक स्त्री ने अपने आंचल से दीपक बुझा दिया और चुपके से घर में चली आई। वह स्त्री थी वसंतसेना। उस घने अंधकार में वह अपनी दासियों के साथ कहीं जा रही थी। संयोग से संस्थानक भी उधर से आ रहा था। वसंतसेना को जाते हुए देखकर वह उसका पीछा करने लगा। उसके साथ उसके कई साथी थे। वे वसंतसेना

को तंग करने लगे और वह भय से थरथर कांपने लगी। वह संस्थानक से अपना पीछा छुड़ाकर भाग जाना चाहती थी। दैवयोग से इसी समय खिड़की खुली और उसने सबकी आंख बचाकर अपने सम्मान की रक्षा की। कोई नहीं जान पाया कि भीतर कौन गया।

रदनिका के हाथ का दीपक बुझ गया तो मैत्रेय फिर दीपक जलाने के लिए घर के भीतर चला गया। रदनिका खिड़की के बाहर आगई। बाहर क्या हो रहा है, इसका उसे पता न था। संस्थानक और उसके नौकर उस घने अंधकार में वसंतसेना के धोखे में एक दूसरे को पकड़कर खुश हो रहे थे। इतने में रदनिका वहां आ पहुंची। संस्थानक ने धोखे में उसे पकड़ लिया। वह उसपर चिल्लाने लगी। संस्थानक का एक साथी था विट। विट वसंतसेना की बोली पहचानता था। उसने संस्थानक से रदनिका को छोड़ देने का अनुरोध किया; पर संस्थानक ने उसके अनुरोध पर ध्यान न दिया। इतने में मैत्रेय दीपक लिये हुए वहां आ पहुंचा। रदनिका को संस्थानक के पंजे में फंसा हुआ देखकर उसे क्रोध आगया। उसने अपना डंडा संभाला और कड़ककर कहा, "रदनिका, यह तुम्हारा अपमान नहीं, यह हमारा और चारुदत्त का अपमान है। चारुदत्त आज दरिद्र भले ही हो; पर इसका यह अर्थ नहीं कि जो चाहे उनके लोगों का अपमान करे।" इतना कहकर उसने अपना डंडा उठाया। विट यह सब देख रहा था। मैत्रेय को बिगड़ते हुए देखकर उसने

विनम्रता के साथ कहा, "महाराज, क्षमा कीजिए। हम लोगों से भूल हुई। हम लोग वसंतसेना की खोज में यहां आये थे। वह धोखा देकर इसी खिड़की से भीतर चली गई और हमने अनजान में इसे पकड़ लिया। आप चारुदत्त से इसकी चर्चा न करें।" विट की क्षमा-याचना पर संस्थानक जल उठा। वह नहीं चाहता था कि इस साधारण-सी भूल के लिए किसीसे क्षमा मांगी जाय। उज्जैन-नरेश का साला और फिर नगर-कोतवाल। वसंतसेना के भागने में मैत्रेय का हाथ समझकर वह दांत पीसता हुआ बोला, "तुम जाकर चारुदत्त से कह देना कि जबतक वसंतसेना न मिलेगी, हमारा-तुम्हारा वैर बना रहेगा।" इतना कहकर संस्थानक वहां से चला गया।

वसंतसेना चारुदत्त के महल में पहुंची। कभी इस महल के भी दिन थे, पर आज वहां एक दीपक तक न था। अंधकार में चारुदत्त को भ्रम होगया। उसने समझा, रदनिका बलि-भोजन देकर लौट आई है। उस समय रोहसन बाहर सोया हुआ था। ठंडी हवा चल रही थी। इसलिए उसने रदनिका के धोके में वसंत-सेना से रोहसन को अंदर सुलाने के लिए कहा और उसे ओढ़ाने के लिए अपना दुपट्टा भी उसे दे दिया। वसंतसेना बोली नहीं। चुपचाप रोहसन को उठाकर अंदर चली गई। इतने में मैत्रेय आगया। उसके साथ रदनिका भी थी। रदनिका को देखकर चारुदत्त समझ न सका कि रोहसन को सुलाने के लिए ले जानेवाली

स्त्री कौन थी। पराई स्त्री से काम कराने की बात सोचकर चारुदत्त सहम गया। उसकी ऐसी दशा देखकर मैत्रेय ने उसका भ्रम दूर किया। उसने कहा संस्थानक से बचने के लिए वसंतसेना ने यहां शरण ली है। इसी कारण अब संस्थानक से भी आपका वैर होगया है।

मैत्रेय यह कह ही रहा था कि इतने में वसंतसेना रोहसन को सुलाकर लौट आई। उसे देखकर चारुदत्त ने अनजान में उससे सेवा लेने के लिए क्षमा मांगी। वसंतसेना ने कहा, "महाराज क्षमा तो मुझे आपसे मांगनी चाहिए थी, क्योंकि मैं आपकी आज्ञा के बिना आपके महल में घुस आई हूं। डाकू मेरे पीछे पड़े हैं। मेरा घर से बाहर निकलना कठिन हो गया है। आप मेरे आभूषण रख लीजिए और मुझे किसीके साथ मेरे घर भेज दीजिए।" इतना कहकर उसने आभूषण उतारे और उन्हें एक पेटी में बंद करके वह घर जाने को तैयार हो गई। चारुदत्त स्वयं उसे घर पहुंचा आये। आभूषण की पेटी मैत्रेय के पास रह गई।

: २ :

उस समय उज्जैन जुआरियों का अड्डा बना हुआ था। बड़े-बड़े लोग दिन-रात जुआ खेला करते थे। देवमंदिर भी जुआरियों से न बचे थे। शर्विलक, संवाहक, सभिक, माथुर और दार्दुरक बड़े-बड़े जुआरी थे। उनका काम था जुआ खेलना, चोरी करना और शराब पीकर मस्त रहना। एक दिन जुआ खेलते-खेलते

उनमें आपस में झगड़ा होगया। संवाहक दस मोहरें हार गया। उसके पास देने को कौड़ी भी न थी। वह देता तो कहां से देता ! माथुर उसे बुरी तरह पीट रहा था। उसका चिल्लाना सुनकर दर्दुरक भी वहां आ पहुंचा। उसने माथुर से संवाहक को छोड़ देने का अनुरोध किया, पर जीता जुआरी भला क्यों किसीकी सुनता। बात बढ़ गई और हाथापाई की नौबत आ गई। यह देखकर दर्दुरक ने माथुर की आंखों में धूल झोंक दी। माथुर आंखें मलने लगा। संवाहक और दर्दुरक भाग गए। दर्दुरक और माथुर में वैमनस्य हो गया। इसीलिए दर्दुरक आर्यक से मिल गया। आर्यक के साथ ऐसे बहुत से व्यक्ति थे, जो छिपे-छिपे उसकी सहायता किया करते थे।

संवाहक वहां से भागकर वसंतसेना के पास पहुंचा। उस समय वसंतसेना अपने कमरे में बैठी हुई थी। उसे देखकर संवाहक ने अपनी सारी कहानी कह सुनाई। उसने कहा, "मैं पटना का रहनेवाला हूं और एक बड़े कुल का हूं। बुरे दिन आने पर किसी की बुद्धि ठिकाने नहीं रहती। मेरा भी यही हाल है। अब भले आदमियों के हाथ-पैर दबाकर अपना पेट पालता हूं। इस कला में मैं बहुत निपुण हूं। आज यही मेरी जीविका का साधन है। पटने से आपके नगर में आकर मैंने एक ऐसे सज्जन की सेवा की, जो बड़े हो सुंदर हैं और बहुत ही मीठा बोलते हैं। वह यदि किसी को कुछ देते हैं तो उसका उन्हें पता भी

नहीं रहता और यदि उनका कोई कुछ बिगाड़े तो उसकी चिंता नहीं करते। वह पराये को भी अपना ही समझते हैं। जो उनकी शरण में जाता है उसको तो बहुत ही मानते हैं। दीन-दुखियों को इतना धन दिया है कि आज वह कंगाल हो गए हैं। उनका नाम है चारुदत्त। वह सेठों के चौक में रहते हैं। उनके यहां से हटकर मैं जूआ खेलने लगा और अब दस मोहरें हारकर आपकी शरण में आया हूं। आप मेरी रक्षा कीजिए।"

चारुदत्त का नाम सुनते ही वसंतसेना प्रसन्नता से फूल उठी। उसे ऐसा लगा, मानो उसका कोई आत्मीय उसे मिल गया हो। अपने आसन से नीचे उतरकर उसने संवाहक का बड़ा आदर-सत्कार किया और उसका ऋण चुकाने के लिए अपना सोने का कंगन दासी मदनिका के हाथ माथुर के पास भेज दिया। वसंतसेना के इस उदार व्यवहार से संवाहक को जुए से घृणा होगई। वह बौद्ध संन्यासी होगया।

उसके जाने के बाद वसंतसेना का सेवक कर्णपूरक वहां आया। वह बहुत प्रसन्न हो रहा था। उसने अभिमान के स्वर में कहा, "आज आपने मेरी वीरता नहीं देखी। आपका हाथी खुंटमोटक सहसा खूंटा तोड़कर भाग निकला। महावत ने उसे पकड़ने की चेष्टा की, पर वह उसको भी मारकर नगर की सड़कों पर उपद्रव करने लगा। उसे देखकर लोग इधर-उधर भागने लगे। इतने में उसने एक

संन्यासी को धर दबोचा और उसे अपने दांतों के बीच में उठा लिया। मुझसे यह दृश्य देखा नहीं गया। मैंने अपने हाथ में एक डंडा लेकर उस मतवाले हाथी को ललकारा और उसके दांतों के बीच से संन्यासी को छुड़ा लाया। मेरे इस साहस को देखकर लोग चकित रह गए। उस समय एक सज्जन ने यह चादर मुझे पुरस्कार में दी।" वसंतसेना उसकी वीरता का वर्णन सुनकर बड़ी प्रसन्न हुई। उसने उसके हाथ से वह चादर ले ली। चादर फूलों में बसी हुई थी। उसने उलट-पुलटकर उसे ध्यान से देखा। उसपर चारुदत्त का नाम था। चारुदत्त का नाम देखकर उस-ने वह चादर ओढ़ ली और कर्णपूरक को अपनी स्वर्ण-मुद्रिका पुरस्कार में देकर विदा किया।

उसी दिन रात्रि में एक घटना और हुई। चारुदत्त मैत्रेय के साथ रेभिल का गाना सुनकर लौटा तो वर्द्धमानक ने वसंतसेना के आभूषणों की पोटली मैत्रेय को सौंप दी और जाकर सो रहा। वे दोनों भी सो गए। उसी समय शर्विलक ने घर में सेंध लगाई। इस कला में वह चतुर था। उसके पिता चारों वेद के पंडित थे, पर वह कुसंगति में पड़कर जुआ खेलता था और चोरी करता था। वसंतसेना की दासी मदनिका से वह विवाह करना चाहता था। उसीके लिए वह चोरी करता था। सेंध लगाकर वह भीतर घुस गया। वहां कहीं मृदंग, कहीं वीणा और कहीं पुस्तकें पड़ीं थीं। वह निराश होगया, पर वह लौटने

ही वाला था कि किसीके बड़बड़ाने की आवाज़ आई। मैत्रेय सपने में बड़बड़ा रहा था और चारुदत्त से कह रहा था कि आप आभूषणों की पेटी अपने ही पास रख लीजिए। शर्विलक ताड़ गया कि यहीं कहीं आभूषणों की पेटी है। उसने इधर-उधर खोज की और पेटी उसके हाथ में आगई। आते ही वह नौ-दो ग्यारह हो गया। उसके भागते ही रदनिका की आंख खुल गई। रदनिका ने उसे भागते देखा, पर पकड़ न सकी। उसने तुरंत मैत्रेय को जगाया। चारुदत्त भी उठ बैठे। पता लगा कि चोर आभूषणों की पेटी ले गया है। इससे उन्हें हर्ष भी हुआ और दुःख भी। हर्ष इस विचार से हुआ कि चोर को एक सेठ के घर से निराश नहीं लौटना पड़ा और दुःख इस बात का कि गरीबी में पराई थाती उनके हाथ से जाती रही।

रदनिका ने जब यह समाचार चारुदत्त की स्त्री धूताबाई को सुनाया तो वह बहुत दुखी हुई। उन्होंने मैत्रेय को बुलाया और उन्हें रतनछठ के व्रत की दक्षिणा के बहाने अपना बहुमूल्य रत्नहार दे दिया। अपने स्वामी के स्वभाव को वह जानती थी। यह भी जानती थी कि वसंतसेना के आभूषणों की चोरी हो जाने से उनपर कलंक लगेगा और वह इसे सहन नहीं कर सकेंगे। उसे यह भी मालूम था कि उन आभूषणों के बदले वह उसे उसका रत्नहार देना भी स्वीकार न करेंगे। इसलिए उसने मैत्रेय को दक्षिणा के रूपमें वह

हार भेंट किया। वही अंतिम संपत्ति थी।

मैत्रेय हार लेकर बाहर आया और चारुदत्त को दिखाकर धूताबाई की दानशीलता की प्रशंसा करने लगा हार देखकर चारुदत्त की जान-में-जान आई। उसने मैत्रेय से कहा, "तुम अभी जाकर इसे वसंतसेना को दे आओ और उससे कह आओ कि आपके आभूषण चारुदत्त जुए में हार गए हैं, जिनके बदले उन्होंने यह हार भेजा है। इसे स्वीकार कीजिए।" मैत्रेय हार लेकर चला गया।

: ३ :

वसंतसेना अपने घर में बैठी हुई चारुदत्त का चित्र बना रही थी कि चेरी ने आकर कहा, "आपकी माताजी ने कहा है कि राजा पालक के साले नगर-कोतवाल संस्थानक ने रथ और बहुतसे आभूषण भेजे हैं। आप इसी रथ में बैठकर उनके घर चली जायं।" वसंतसेना को यह सुनकर बड़ा क्रोध आया। उसने दासी को फटकारकर तुरंत बाहर निकाल दिया।

इधर शर्विलक बड़ी देर से मदनिका की खोज कर रहा था। इसी समय उसने मदनिका को देखा और उसका मार्ग रोककर खड़ा होगया। उसने कहा, "आज से तुम अपनेको दासता से मुक्त समझो। तुम्हारे लिए मैं कीमती आभूषण लाया हूं। इन्हें अपनी स्वामिनी को दे आओ और उनसे विदा लेकर मेरे साथ चलो।" मदनिका भी शर्विलक को चाहती थी। उसने आभूषणों की पेटी ले ली। उस पेटी में वसंत-

सेना के ही आभूषण थे। मदनिका उन्हें देखकर उदास हो गई। शर्विलक उन आभूषणों को चुराकर लाया है, यह वह जानती थी। वसंतसेना के आभूषण और उसीकी भेंट ! इधर शर्विलक के साथ रहने की भी उसको बड़ी इच्छा थी। ऐसो दशा में उसके सामने एक कठिन समस्या पैदा होगई। थोड़ी देर तक उसने गंभीरता-पूर्वक विचार किया। इसके बाद बोली, "शर्विलक एक काम करो। तुम इन आभूषणों को लेकर बाईजी के पास चले जाओ और उनसे कह दो कि चारुदत्त ने उनके आभूषण भेजे हैं। इससे सबकी बात बनी रहेगी।"

शर्विलक ने मदनिका की बात मान ली। मदनिका ने वसंतसेना के पास जाकर चारुदत्त के पास से एक ब्राह्मण के आने की सूचना दी। वसंतसेना पहले से ही छुपकर मदनिका और शर्विलक की बातें सुन चुकी थी। इसलिए उसे गहने देखकर कोई अचरज नहीं हुआ। उसने मदनिका का हाथ शर्विलक के हाथ में देते हुए कहा, "जाओ मदनिका, अब तुम्हें विदा करती हूं। हमारी याद न भूलना।" मदनिका सब कुछ समझ गई। उसकी आंखों में आंसू आगए। वह रोने लगी। वसंतसेना ने उसे धैर्य बंधाया और रथ मंगाकर उसे विदा किया।

इस घटना से शर्विलक को बड़ी शिक्षा मिली। उसने अपना जीवन नये सिरे से शुरू करने का निश्चय किया। यही सोचते-विचारते वे दोनों रथ में बैठे

अपने भावी जीवन का स्वप्न देखते हुए जा रहे थे कि सहसा उन्हें शोर सुनाई दिया। बात यह थी कि जिस अहीर के बेटे आर्यक के बारे में सिद्धों ने भविष्य-वाणी की थी कि वह राजा होगा, उसे राजा पालक ने जेल में डाल दिया था।

शर्विलक उसका घनिष्ठ मित्र था। जब उसने जन-कोलाहल द्वारा यह समाचार सुना तो वह उसे मुक्त करने के लिए व्याकुल हो उठा। उसने मदनिका को अपने घर भेज दिया और स्वयं मित्र की सहायता के लिए चल पड़ा।

: ४ :

वसंतसेना शर्विलक और मदनिका को विदा कर के बैठी थी कि उसकी चेरी के साथ मैत्रेय ने उसके महल में प्रवेश किया। उसने वह महल अबतक नहीं देखा था। उस महल में आठ चौकें थीं और हरेक चौक विलास की पूरी सामग्री से भरा हुआ था। कहीं पंडित मंत्र जप रहे थे, कहीं नर्तकियां नाच रही थीं, कहीं रत्न-पारखी रत्नों की परीक्षा कर रहे थे, कहीं सुस्वादु भोजन बनाया जा रहा था, कहीं चौसर खेली जा रही थी। कहां यह वैभव-विलास और कहां चारुदत्त का टूटा-फूटा भवन। यही सोचते हुए वह आगे बढ़ा और वसंतसेना के पास जाकर उसे आशीर्वाद देते हुए बोला, "मैं अपने स्वामी चारुदत्त का एक संदेश लेकर आपके पास आया हूं। आपके आभूषण वह जुए में हार गए हैं। इसलिए उन आभूषणों

के बदले में यह रत्नहार उन्होंने आपको दिया है। आप इसे स्वीकार करें।" वसंतसेना ने हार लेकर रख लिया और चारुदत्त से मिलने का संदेश देकर मैत्रेय को सम्मानपूर्वक विदा किया।

संध्या होगई थी। चारुदत्त अपनी उजड़ी हुई वाटिका में बैठे हुए थे। मैत्रेय भी आगया था। दोनों वसंतसेना की राह देख रहे थे। इतने में कुम्भिलक ने आकर उसके आने की सूचना दी। चारुदत्त ने प्रसन्न होकर उसे अपना दुपट्टा पुरस्कार में दे दिया। कुम्भिलक दुपट्टा लेकर चला गया। उसके चले जाने के बाद मैत्रेय ने कहा, "भाई चारुदत्त, आप बड़े सरल हैं। आप स्त्री-हृदय का छल-कपट नहीं जानते। वसंतसेना बड़ी धूर्त है। वह आपको अपने प्रेम में फंसाकर ठगना चाहती है। आपने उसके पास जो रत्नहार भेजा था उसका मूल्य उसके गहनों से कम न होगा। फिर भी वह आपसे अधिक धन लेने के लोभ से यहां आ रही है। आप होशियार रहें। कहीं उसके फंदे में न फंस जायं।" चारुदत्त ने मैत्रेय की बातें बड़े ध्यान से सुनीं और कहा, "कोई हानि नहीं है, मैत्रेय! उसे आने दो। मैं उसे संतुष्ट कर लूंगा। तुम जाकर उसे लिवा लाओ।" मैत्रेय उठा और चला गया।

उस दिन आकाश काले-काले बादलों से घिरा हुआ था और वर्षा भी हो रही थी। उसी वर्षा में भीगती हुई वसंतसेना चारुदत्त के घर पहुंची। मैत्रेय ने रास्ते में ही उसका स्वागत किया और उसे सम्मान-

पूर्वक चारुदत्त के पास पहुंचा दिया। वसंतसेना के वस्त्र भीग गए थे। चारुदत्त ने उसे नये वस्त्र पहनने को दिलवाये और फिर आसन देकर उसे अपने पास बिठाया। उसी समय उसकी चेरी ने आभूषणों की पेटी उसके सामने रख दी और कहा, "आपने जो रत्नहार भेजा था, उसे बाईजी जुए में हार गई हैं। उसके बदले में आप इन आभूषणों को स्वीकार कीजिए।" चारुदत्त और मैत्रेय आभूषणों की वह पेटी देखकर आश्चर्य में पड़ गये। उन्हें विश्वास न हुआ कि वह पेटी है, जो उनके यहां से उस दिन रात को चोरी चली गई थी। उन्हें इस प्रकार हैरान देखकर चेरी ने उनको सब कहानी कह सुनाई। इसके बाद वसंतसेना और चारुदत्त बड़ी देर तक आपस में बातें करते रहे।

सवेरा होते ही वर्षा रुक गई। चारुदत्त उठकर अपनी वाटिका में चले गये और वर्द्धमानक से कह गए कि जब वसंतसेना सोकर उठे तो उन्हें बहेली में बिठाकर वाटिका में पहुंचा दे। उनके चले जाने पर दासी की भी आंख खुल गई। उसने अंतःपुर में जाकर वसंतसेना को जगाया। वसंतसेना उठ बैठी। उसने तुरंत रत्नहार दासी के हाथ धूताबाई के पास पहुंचा दिया। धूताबाई भी साधारण स्त्री न थी। जिस हार को वह एक बार दे चुकी, उसे वापस लेना उचित नहीं था। उसने हार लौटा दिया। वसंतसेना ने हार रख लिया। इसी समय चारुदत्त का पुत्र

रोहसन मिट्टी की गाड़ी के साथ खेलता-खेलता बाहर निकला और रदनिका से सोने की गाड़ी के लिए आग्रह करने लगा। अच्छे दिन होते तो कोई बात नहीं थी। एक नहीं अनेक सोने की गाड़ियां बन सकती थीं; परंतु ऐसे दिनों में उसका विचार मन में लाना भी कठिन था। वह रोहसन को समझाती थी, फुसलाती थी, पर वह मचलता ही जाता था। जब रदनिका प्रत्येक उपाय करके थक गई तब वह उसे बहलाने के लिए वसंतसेना के पास ले गई। वसंतसेना को जब यह मालूम हुआ कि वह चारुदत्त का पुत्र है और सोने की गाड़ी के साथ खेलने के लिए मचला हुआ है, तो उसने अपने शरीर के सारे बहुमूल्य आभूषण उतार दिये और कहा, "बेटा रोओ नहीं, मेरे आभूषण लो और अपने खेलने के लिए सोने की गाड़ी बनवा लो।" अभी वह पूरी बात कह भी न पाई थी कि वर्द्धमानक बहेली ले आया। वसंतसेना जाने की तैयारी करने लगी।

होनहार होकर ही रहती है। वह टल नहीं सकती। चारुदत्त की खिड़की के सामने एक बहेली लगी हुई थी। वसंतसेना तैयार थी। वह आकर उसी बहेली में बैठ गई। गाड़ीवान ने बिना भीतर देखे ही बहेली हांक दी। बहेली सड़क पर तेजी से बढ़ने लगी। वह किसकी बहेली है और कहां जा रहो है, वसंतसेना ने यह भी जानने की कोशिश नहीं की।

बहेली कुछ ही दूर बढ़ी होगी कि भागता हुआ आर्यक वहां आ पहुंचा। खिड़की खुली हुई तो थी ही। वह उसमें घुस गया। इतने में एक दूसरी बहेली आई। आर्यक को पुनः भागने का अवसर मिल गया। वह चुपके से उसी बहेली में आकर बैठ गया। गाड़ी में सवारी देखकर गाड़ीवान ने बहेली हांक दी। वह भी तेजी से चलने लगी। आर्यक के कारावास से भाग जाने के कारण सारे नगर में कोलाहल मचा हुआ था। राजा के गुप्तचर पग-पग पर उसकी खोज कर रहे थे। एक सिपाही ने गाड़ी देखी तो रोक ली। उसने भीतर घुसकर गाड़ी की खोज की। उसमें बैठा था आर्यक। अपनेको सिपाहियों के हाथ में पड़ा देखकर वह सिपाही से क्षमा-याचना करने लगा। सिपाही था दयालु। उसने आर्यक को छोड़ दिया और उसे तलवार देकर कहा कि यदि आगे कोई संदेह करे तो यह तलवार उसे दिखा देना। इतना कहकर उसने बहेली को आगे बढ़ने का संकेत किया। बहेलो फिर उसी गति से चलने लगी।

चारुदत्त और मैत्रेय पुष्पकरण वाटिका में बैठे हुए उसकी शोभा का बखान कर रहे थे। जब देर हो गई और वर्द्धमानक बहेली लेकर नहीं आया तो चारुदत्त को बड़ी चिंता हुई। वह उठना ही चाहते थे कि वर्द्धमानक बहेली दौड़ाता हुआ वहां आ पहुंचा। मैत्रेय वसंतसेना का स्वागत करने गया। उसने बहेली के पास पहुंचकर उसका पर्दा उठाया और भीतर

झांका। उसे अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ। एक बार देखा, दो बार देखा, तीन बार देखा। हर बार उसे गाड़ी के भीतर एक पुरुष बैठा दिखाई दिया और वह था आर्यक। मैत्रेय उसे देखकर सन्न रह गया। वसंतसेना के आने में देर होते देखकर चारुदत्त भी वहां आ पहुंचा। उसने भी आर्यक को देखा। वह उसे पहचान न सका। आर्यक ने अपना परिचय देते हुए कहा, "मैं अहीर का पुत्र आर्यक हूं। आज आपकी शरण में आया हूं।

चारुदत्त उसके संबंध में बहुत-कुछ सुन चुका था। उसे उससे सहानुभूति भी थी। उसने तुरंत वर्द्धमानक से कहकर उसकी बेड़ियां खुलवा दीं और उसी बहेली में बिठाकर उसे विदा किया।

उधर उसी वाटिका में एक सुंदर सरोवर के पास एक चबूतरे पर विट के साथ संस्थानक बैठा हुआ था। अचानक उसकी दृष्टि एक बौद्ध संन्यासी पर पड़ी। वह था भूतपूर्व संवाहक। अपने वस्त्र धोने के लिए वह उस सरोवर तक आया था। संन्यासी को देखते ही संस्थानक जल उठा। वह संन्यासी को फटकारने और पीटने लगा। विट को दया आगई। उसने संस्थानक के हाथों से उसे छुड़ाकर भगा दिया। संन्यासी बाहर चला गया। इतने में स्थावरक बहेली हांकता हुआ वहां आ पहुंचा।

वसंतसेना चारुदत्त से मिलने के लिए उस बहेली में बैठी थी। वह बहेली चारुदत्त की नहीं,

संस्थानक की थी। संस्थानक ने घर जाने के लिए बहेली मंगाई थी। बहेली के बैलों की घंटी सुनकर संस्थानक और विट उठ खड़े हुए और उसमें बैठने के लिए आगे बढ़े। विट ने ज्योंही बहेली का पर्दा उठाया, वसंतसेना को देखकर चकित रह गया। उसने तुरंत संस्थानक से कहा। संस्थानक प्रसन्नता से उछल पड़ा भूखे को मनचाहा भोजन मिल गया। वसंतसेना के पास आकर उसने अपनी पहली बातों के लिए क्षमा मांगी। वसंतसेना हिली तक नहीं। वह चुपचाप उसकी बातें सुनती रही। क्रोध से उसका शरीर जल रहा था और वह अपने दुर्भाग्य को कोस रही थी। अपने बचने का अवसर न पाकर उसने संस्थानक के झुके हुए सर पर कसकर लात जमा दी। संस्थानक का सपना टूट गया और वह क्रोध से वह भभक उठा। उसने एक झटके में वसंतसेना को बहेली से बाहर खींच लिया और उसको मारने का उपाय सोचने लगा। पहले उसने विट से यह काम करने के लिए कहा; परंतु उसने इंकार कर दिया। स्थावरक भी आनाकानी करने लगा। अंत में संस्थानक ने स्वयं उसकी हत्या करने का विचार किया। विट और स्थावरक के रहते यह कार्य हो नहीं सकता था, इसलिए उसने उन दोनों को किसी बहाने से बाहर भेज दिया।

उनके बाहर जाते ही उसने वसंतसेना का गला दबा दिया। वसंतसेना अचेत होकर भूमि पर

गिर पड़ी। इतने में विट वहां आगया और वसंतसेना के बारे में संस्थानक से पूछने लगा। संस्थानक ने कहा, "विट, यदि तुम यहां से भागना भी चाहो तो भाग नहीं सकते। वसंतसेना की हत्या का दोष तुम्हें स्वीकार करना होगा। यदि तुममें इस अपराध को स्वीकार करने का साहस नहीं हो तो किसी दूसरे व्यक्ति को इसके लिए तैयार करो।" संस्थानक की बातें सुनकर विट के पैरों के नीचे की धरती सरक गई। संस्थानक को इस रूप में उसने कभी नहीं देखा था। यदि वह उसे पहचानता होता तो वह कभी उसका साथ न देता। वह अपने दुर्भाग्य पर पछताने लगा और अवसर पाकर अपनी प्राण-रक्षा के लिए नौ-दो ग्यारह होगया। आर्यक का दल उसको ताक में था। वह जाकर उसीमें मिल गया।

विट के अचानक भाग जाने से संस्थानक को बड़ी चिंता हो गई। स्थावरक अभी उसीके पास था। उसपर भी उसको संदेह हो रहा था। इसलिए उसने उसे तुरंत बांधकर कोठे में डाल दिया और वसंतसेना के शरीर को सूखी पत्तियों से ढककर चारुदत्त को फंसाने का विचार करके न्यायालय की ओर चल दिया।

: ५ :

न्यायालय में न्यायाधीश अपने आसन पर बैठे हुए थे। कचहरी लगी हुई थी। अभियोगों की सुनवाई होने जा रही थी। शोधनक लोगों को बुला रहा था। उसकी बुलाहट पर संस्थानक ने आगे बढ़कर अपना

परिचय दिया और कहा, "हमारे अभियोग की सुनवाई पहले होनी चाहिए। मामला बड़ा संगीन है।" शोधनक ने न्यायालय के भीतर जाकर न्यायाधीश को संस्थानक के आने की सूचना दी। न्यायाधीश संस्थानक के स्वभाव को जानते थे। संस्थानक कई निर्दोष व्यक्तियों को फंसाकर उनके प्राण ले चुका था। इसलिए उन्होंने उसका अभियोग उस दिन सुनने से इंकार कर दिया। शोधनक ने बाहर आकर जब यह बात संस्थानक से कही तब वह जल-भुन गया। उसने बिगड़कर कहा, "जाकर न्यायाधीश से कह दो कि मैं राजा पालक का साला हूं। यदि मेरे अभियोग की आज सुनवाई न होगी तो राजा पालक, अपनी बहन और अपनी मां से कहूंगा और न्यायाधीश को इस पद से हटवा दूंगा। दूसरा न्यायाधीश आयगा और वह मेरा अभियोग सुनेगा। अभियोग की सुनवाई तो आज ही होगी, कल नहीं।"

शोधनक ने न्यायालय में जाकर न्यायाधीश से ज्यों-की-त्यों बात कह दी। जीवन से जीविका प्रिय होती है। न्यायाधीश ने अपने बचाव की कोई सूरत न देखकर संस्थानक को बुला भेजा।

संस्थानक ने आकर कहा, "अभियोग बड़ा संगीन है। आज सवेरे जब मैं अपनी पुष्पकरण वाटिका में सैर करने गया तब मैंने वहां एक स्त्री का शव पड़ा देखा। मुझे ऐसा लगता है कि उसे किसी हत्यारे ने आभूषणों के लोभ से मार डाला है। मुझे वह स्त्री

वसंतसेना मालूम देती है।"

न्यायाधीश समझ गया। उसने अभियोग की छान-बीन के लिए वसंतसेना की मां को बुलवाया और उसका बयान लिया। अपने बयान में बुढ़िया ने कहा कि वह कल चारुदत्त सेठ के यहां गई थी। वहां से अबतक लौटकर नहीं आई। उसके बयान के अनुसार चारुदत्त भी बुलाए गए।

न्यायाधीश चारुदत्त को भली-भांति जानता था। वह समझता था कि संस्थानक ने उसके विरुद्ध मामला बनाया है, फिर भी कानून के सामने वह विवश था। चारुदत्त ने न्यायालय में प्रवेश करते ही एक क्षण में सब समझ लिया। उन्होंने न्यायाधीश के सामने अपना बयान देते हुए इतना स्वीकार किया कि वसंतसेना कल रात उनके घर आई थी और सवेरा होते ही वह चली गई थी। कहां चली गई, इसका उन्हें पता नहीं। इसके पश्चात् नगर-रक्षक की गवाही हुई। उसने अपने बयान में कहा कि मैंने चारुदत्त की बहेली में वसंतसेना को पुष्पकरण वाटिका की ओर जाते देखा था। न्यायाधीश ने एक घुड़सवार को वाटिका में शव की परीक्षा करने के लिए भेजा। उसने लौटकर निवेदन किया कि मैंने एक स्त्री का शव देखा है, जिसके बाल वहां पड़े हैं और कुत्ते उसका शव नोच-नोचकर खा रहे हैं। न्यायाधीश को अब भी संदेह हो रहा था, पर संस्थानक अपने हठ पर डटा हुआ था और बार-बार चारुदत्त को अपना अपराध स्वीकार

करने के लिए उत्तेजित करता था।

चारुदत्त मौन था। वह कहता भी तो क्या कहता? उस समय उसे याद आ रही थी अपने बच्चे रोहसन और उसकी माता की। वहां उसका कोई संगी-साथी न था। वसंतसेना ने रोहसन को सोने की गाड़ी बनवाने के लिए जो आभूषण दिये थे, उन्हें लौटाने के लिए मैत्रेय उसके घर गया हुआ था। वह भी नहीं आया। चारुदत्त इन्हीं चिंताओं में डूबा हुआ था कि मैत्रेय वहां आगया। चारुदत्त की दशा और उनपर लगाये गए अपराध का हाल सुनकर उसका क्रोध भभक उठा और वह संस्थानक को मारने के लिए झपटा। अभी वसंतसेना के आभूषण उसीके पास थे। वह उन्हें अपने पेट से बांधे हुए था। सहसा झपटने के कारण आभूषण पेट से खुलकर गिर पड़े। संस्थानक ने लपककर उन आभूषणों को बटोर लिया और उन्हें न्यायाधीश के सामने रखते हुए कहा, "मैत्रेय के पास इन आभूषणों का निकलना यह सिद्ध करता है कि चारुदत्त ने ही वसंतसेना को मारा है। इसलिए अब आप निर्णय कीजिए। न्याय में विलंब न कीजिए।" चारुदत्त ने देखा कि विधाता उसके विरुद्ध है और उसकी कुछ चल नहीं रही है। ऐसी स्थिति में उसने अपने कलेजे पर पत्थर रखकर दोष स्वीकार कर लिया। न्यायाधीश ने उसे पकड़वा लिया। वसंतसेना की माता ने उसे बचाने की कोशिश की, पर न्यायाधीश ने कुछ नहीं सुना। उन्होंने महाराज पालक से अनुरोध

किया कि चारुदत्त को देश-निकाला दे; पर यह अनुरोध स्वीकार नहीं किया गया। तब न्यायाधीश ने मृत्युदंड सुना दिया और दक्षिण श्मशान में चारुदत्त को सूली पर चढ़ाने की व्यवस्था कर दी गई।

पर चारुदत्त की निर्दोष आत्मा ने इसे स्वीकार नहीं किया। उसने प्रार्थना की कि अग्नि, विष और जल में डुबोकर उसकी परीक्षा कर ली जाय और यदि किसी प्रकार उसका अपराध प्रमाणित होजाय तो उसे प्राण-दण्ड दिया जाय। पर उसकी यह प्रार्थना कौन सुनता? अधिकारी-वर्ग उसके रक्त का प्यासा था।

: ६ :

जब न्यायाधीश सत्य की रक्षा नहीं कर सकते तब ईश्वर स्वयं सत्य की रक्षा करता है। चारुदत्त के पक्ष में सत्य था। दक्षिण श्मशान की ओर ले जाते हुए चांडाल जनता में उसके मृत्युदण्ड की घोषणा करने लगे। सौभाग्य से इस घोषणा के शब्द स्थावरक के कान में पड़ गए। वह अभी कोठे पर ही पड़ा हुआ था। एक निर्दोष ब्राह्मण को सूली की ओर ले जाये जाते हुए देखकर उसका मन विद्रोह कर उठा। वह तुरंत छत से नीचे कूद पड़ा। गिरते ही उसके बंधन टूट गए। उस समय तक अपार जन-समूह एकत्रित होगया था। भीड़ को चीरते हुए उसने आगे बढ़कर कहा, "चारुदत्त निर्दोष है। इसका प्रमाण मैं दे सकता हूं। पर जन-कोलाहल में उसके शब्द खो गए। चांडाल

आगे बढ़े। श्मशान आगया। चारुदत्त का पुत्र रोहसन भी मैत्रेय के साथ वहां पहुंच गया। वह फूट-फूटकर रो रहा था। बड़ा कारुणिक दृश्य था वह! देखनेवालों के हृदय पसीज गए। उस अवसर पर यदि कोई प्रसन्न था तो वह था संस्थानक। संस्थानक चारुदत्त को शीघ्र सूली पर चढ़ाने के लिए चांडालों को कह रहा था। चारुदत्त को शूली दी ही जानेवाली थी कि एक योगी ने आगे बढ़कर चांडालों को रोक दिया।

जन-समूह की आंखें इस सूली पर से हटकर इस योगी पर जम गईं। वसंतसेना भी उसके साथ थी। उन दोनों के श्मशान-भूमि पर पहुंचते ही अन्याय का पर्दा उड़ गया और सत्य का तेज चमकने लगा। उस समय सबने देखा कि वसंतसेना जीवित है। चांडालों ने उसे देखते ही अपना हाथ रोक लिया। सबके हृदय आशा और उल्लास से भर गए। संस्थानक भयभीत होकर भाग गया। चारुदत्त सूली से नीचे उतर आया। उसने योगी की ओर कृतज्ञता के आंसू भरे हुए नेत्रों से देखा। वह उसे पहचान न सका। योगी ने कहा, "स्वामिन्! मैं आपका दास हूं संवाहक। मैंने बहुत दिनों तक आपका नमक खाया है। दुर्दिन आने पर जब आपने मुझे मुक्त कर दिया तब मैं एक दिन जुआरियों से दस मोहरें हारकर वसंतसेना की शरण में गया। वसंतसेना ने उस जुआरी को अपना आभूषण देकर मेरे सम्मान की रक्षा की। उनकी इस उदारता का मुझपर इतना अधिक

प्रभाव पड़ा कि मैं बौद्ध संन्यासी हो गया। आज सवेरे की बात है कि मैं अपना वस्त्र धोने के लिए पुष्पकरण वाटिका की ओर गया। संस्थानक वहीं एक चबूतरे पर बैठा हुआ था। उसने मुझे डांटकर बाहर निकाल दिया। थोड़ी देर में अपने वस्त्र दूसरी जगह धोकर उन्हें सुखाने के लिए जब मैं फिर वहां पहुंचा तो मैंने अपने कपड़े को पत्तियों के ढेर पर फैला दिया और सूखने की प्रतीक्षा में वहीं बैठ गया। उसी समय मैंने देखा कि पत्तियों के उस ढेर में किसीके प्राण छटपटा रहे हैं। मैंने पत्तियां हटाईं तो वसंतसेना को पहचानकर उसे बाहर निकाला। प्यास से उसका गला सूख रहा था। मैंने तुरंत जल पिलाया। जल पीते ही उसकी मूर्च्छा दूर होगई। इसके बाद मैं उसे पास के मठ में ले गया, जहां मेरी गुरु-बहन रहती है। मेरी गुरु-बहन ने उसकी सेवा की और थोड़ी देर में उसमें जान आगई। यह वही वसंतसेना है, स्वामिन्! आपके भाग्य से ही यह बच गई। संस्थानक ने तो इसे मार ही डाला था।" चारुदत्त के साथ-साथ जन-समूह ने भी योगी संवाहक की बात सुनी और हर्ष-ध्वनि की। इसी अवसर पर शर्विलक भी वहां आ पहुंचा।

शर्विलक अब न चोर था और न जुआरी। उसने उज्जैन को पालक के अत्याचारों से मुक्त करने के लिए उसके विरोधी अहीर के बेटे आर्यक को कारावास से मुक्त किया और राजा बनाया। जिस दिन यह घटना हुई उसी दिन उसे चारुदत्त को सूली पर चढ़ाने

की सूचना मिली। आर्यक चारुदत्त को जानता था। वह उसके उपकारों को भूला न था। उसने तुरंत मुक्ति-पत्र लिखा और शर्विलक को देकर श्मशान की ओर भेजा। वहां अभी जनता राजा की आज्ञा की राह देख रही थी। शर्विलक ने वहां पहुंचकर चारुदत्त के सामने अपना सर झुका दिया। वह उसे एकाएक पहचान नहीं सका। शर्विलक ने लज्जा से सर झुकाकर कहा, "मैं हूं वसंतसेना के आभूषणों का चोर शर्विलक !" शर्विलक का नाम सुनकर चारुदत्त ने कुतूहलवश पूछा, "तो क्या तुम्हींने आर्यक को कारावास से मुक्त किया था ?" शर्विलक ने विनम्र शब्दों में कहा, "हां महाराज, अब आपका आर्यक नगर-नरेश होगया है। उसने आपके लिए पत्र देकर मुझे यहां भेजा है और वेणा के किनारे कुशावती का राज्य भी आपको दिया है। राजमंत्री का भार भी आपको ही उठाना होगा। उज्जैन नगरी में सत्य और न्याय का शासन होना चाहिए।" चारुदत्त के साथ-साथ उस जन-समूह ने भी शर्विलक के शब्द सुने और वह जयजयकार कर उठा।

तभी शर्विलक की आज्ञा से दो सिपाही संस्थानक को उसी श्मशान-भूमि पर पकड़ लाये और सूली की ओर ले चले। चारुदत्त पास ही खड़े थे। संस्थानक ने सूली की ओर जाते हुए उनके चरणों पर सर रख दिया। उसके मुंह से एक ही शब्द निकला, "क्षमा !"

चारुदत्त अपना वैर भूल गए। उनका हृदय पिघल

गया। उन्होंने तुरंत संस्थानक को अभय-दान द दिया।

इधर यह घटना घट रही थी, उधर चारुदत्त को प्राण-दंड दिये जाने का समाचार सुनकर सती-साध्वी धूताबाई न रोई, न चिल्लाई। उसने जौहर की तैयारी की। चिता जल उठी। रोहसन उसका आंचल पकड़कर उसे रोकने लगा। रदनिका रोने लगी। धूताबाई ने रोहसन के हाथ से अपना आंचल छुड़ाकर अग्नि में प्रवेश करने के लिए एक पग आगे बढ़ाया ही था कि शर्विलक और चारुदत्त वहां पहुंच गए। दोनों के हृदय आनंद और उल्लास से भर गए। उजड़ी हुई वाटिका फिर बस गई। वसंतसेना और धूताबाई ने एक-दूसरे को प्रेम से गले लगाया। वसंतसेना गणिका से बहू बन गई। उसी समय चारुदत्त ने संवाहक को विहारों का कुलपति, संस्थानक को नगर-कोतवाल, चांडालों को जेल-चौधरी तथा न्यायाधीश चंदनक को दंडनायक घोषित किया। उसकी यह घोषणा सुनकर उज्जैन में कई दिन तक बधाइयां बजती रहीं।

Ticket No.	Issue Date	Return Date	Ticket No.	Issue Date	Return Date

'संस्कृत साहित्य सौरभ' की पुस्तकें

१. कादंबरी
२. उत्तररामचरित
३. वेणी-संहार
४. शकुंतला
५. मृच्छकटिक
६. मुद्राराक्षस
७. नलोदय
८. रघुवंश
९. नागानंद
१०. मालविकाग्निमित्र
११. स्वप्नवासवदत्ता
१२. हर्ष-चरित
१३. किरातार्जुनीय
१४. दशकुमार चरित : भाग १
१५. दशकुमार चरित : भाग २
१६ मेघदूत
१७. विक्रमोर्वशी
१८. मालतीमाधव
१९. शिशुपाल-वध
२०. बुद्ध-चरित
२१. कुमारसंभव
२२. महावीर-चरित
२३. रत्नावली
२४. पंचरात्र
२५. प्रियदर्शिका
२६. वासवदत्ता
२७. रावणवध
२८. सौंदरनंद

मूल्य प्रत्येक का छः आना

५

सस्ता साहित्य मण्डल

छः आना